गुरु शिष्य मीमांसा.

प्रथम, व तृतीय श्वेताम्बर यति कान्फरन्स के
प्रेसिडट, प्राचीन शिलालेखों के ज्ञाता,
मगसी तीर्थ कमेटी के मेम्बर, व
इन्दोर जैन आत्मोन्नति
सभा के अध्यक्ष

माणकचन्द गुरु जगरूप यति.
सकलित

श्रीलक्ष्मी—विलास स्टीम प्रस, इदोर

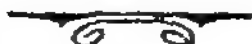
सवत् १९७८ विक्रम)   (किम्मत ।) आने

प्रस्तावना

जैन सम्प्रदायमें, जैसे, गृहस्थलोगों के लिये, धर्म के वास्ते [illegible] अर्हन्नीति, भद्रबाहुसंहिता, त्रिवर्णाचार, व नीतिवाक्यामृत, ऐसे ग्रन्थों में, कुछ कुछ स्पष्टीकरण किया है वैसा जैन गुरुशिष्य के सदधर्म, धर्मे का निर्णय करने के लिये कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ देखनेमें आता नहीं पहिले यतिलोग निर्ग्रन्थ रहते थे, इस से इनमें द्रव्यविषयक विवाद होता न था अब कोई कोई यतिलोग सग्रन्थ होगये हैं द्रव्यादि पास रखते हैं और द्रव्यादिक के लिये झगड़े वगैरे लड़ते हैं उस के निर्णय करने के लिये यह छोटासा संग्रह, जैन शास्त्रानुसार लिखकर प्रकट किया है इस को पाठकगण समझ जायेंगे कि, चेलाका क्या हक है, व गुरु का क्या अधिकार है

संवत् १९७६ विक्रम
[illegible] इन्दौर

माणकचन्द गुरु जगरूप यति
[illegible] प्रेसिडेंट
[illegible]
[illegible]
इन्दौर [illegible] सभा के अध्यक्ष



गुरु शिष्य मीमांसा



हस्थ लोगों के दायभाग व वारसे के सबंधमे वादग्रस्त विषय का निर्णय करने बाबद जैसे हिन्दुलोगोंमें मनुस्मृति, मिताक्षरा, व्यवहार मयूख, सस्कार कौस्तुभ, याज्ञवल्क्य स्मृति व बहुतसी सहितायें वगैरे ग्रन्थ हैं, वैसे मुसल्मानी धर्ममें भी शरह वगैरे ग्रन्थ हैं और जैन धर्ममें भी अर्हन्नीति, नीतिवाक्यामृत, त्रिवर्णाचार, और भद्रबाहुसहिता वगैरे ग्रन्थ हैं

हिन्दु गृहस्थ लोगों के दायसबध की, व वारसे की, मीमासा, शुक्र शोणित पिंडदानादि कार्य कारण से किई जाती है, और यवन लोगोंमें हुक वगैरे के विचार से वारसे का विचार होता है परतु जैन यानि सम्प्रदाय का एक भिक्षुकवर्ग है उसमें जो पहिले पहिले यति (साधु) होना चाहता है उस को उसका खुदका सर्वद्रव्यादि वस्तु मान व कुटुम्बपरिवार का शपथ पुरसर त्याग करना पडता है, व यावज्जीव कोई प्रकार का मूर्छाजनक द्रव्यादि वस्तु ग्रहण करूगा। नहीं यावज्जीव शरीर की शुश्रूषा छोड गुरु आज्ञापालन, व गुरुसेवा आगम पर्यन्त करूगा ऐसी शपथ शिष्य होनेवाला सर्व समुदाय ये-

समक्ष तीन * वचन अंगीकार करता है, तब गुरु उसे दीक्षा देता है उस वख्त से दीक्षा लेनेवाला गुरुका शिष्य (दास) होता है गुरु उस को अपने पास रखे, या दूर करदे, अधिकार गुरु को है शिष्य का अधिकार गुरु पर कोई प्रकारका रहता नहीं

मनुष्य, कई प्रकार से साधु होता है कोई भयसे साधु होता है कोई निरुद्योगसे साधु होता है कोई द्वेषसे, कोई क्रोधसे, कोई लोभसे, कोई केवल उदरपूर्ति के लिये, व कोई दुःख से ऐसे अनेक कारणोंसे साधु होता है और कोई संसार से अत्यंत विरक्त होकर सर्व संग परित्याग कर विरक्त वृत्तिसे धर्म करने के निमित्त भी साधु होता है परंतु मुख्य करके सर्वसाधुओं का ध्येय एक निरिच्छना है गुरु के पास दीक्षा लेता है तब शपथ पुरःसर सर्व संग परित्याग करके ही साधु होता है और आगामी कालमें भी कोई प्रकार की भोजन वस्त्रके सिवाय द्रव्यादि किसीसे न लेने की गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा कर लेता है इस से उस को कोई प्रकार का दाय मिलता नहीं यह सिद्ध है धर्मान्तर होकर जो गुरुके कुलमें रहता है, व गुरुने जिसपर अपना स्वत्त्व रखकर विद्याभ्यासादि कराया है और पालन पोषणादि की क्षति उठाकर निपुन बनाया है व जो गुरुके कुल का हित कर्त्ता है व गुरु कथित धर्म पर दृढश्रद्धा रखकर धर्म पालन करता है वह शिष्य गिना जाता है और उन शिष्योंमें भी जो अधिक श्रेष्ठ हो उसी को गुरु उत्तराधिकारी करता है अगर उनमें भी कोई योग्य न मिले तो दुसरे किसीको, जिसपर गुरु प्रसन्न हो उस को अपना

* करेमि भंते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीव पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि करतं अण्णं न समणुजाणामि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि

उत्तराधिकारी बनाने का मुख्त्यार है. शिष्य तो दीक्षा लेने समय पहिले ही से जन्म मरके लिये सर्व प्रकार का परिग्रह ग्रहण करने का त्याग करचुका है शिष्यों को गुरु आज्ञा बिना कुछ भी करने का अख्त्यार व नियम नहीं है (देखो उत्तराध्ययनसूत्र टीका कलकत्ता छापाकी सम्वत् १९३६ की पृष्ठ ३३९)

जैन सूत्र सुगडांग की टीकामें दोप्रकार के शिष्य कहे हैं.

" शिष्योद्विविधो द्विप्रकारो ज्ञातव्यो भवति, तद्यथा प्रव्रज्यया शिक्षयाच्च यस्य प्रव्रज्यादीयते, शिक्षा, वा यो ग्राह्यते स द्विप्रकारोपि, शिष्यइह शिक्षा शिष्येण प्रकृत मधिकारो, यः शिक्षा गृण्हाति शिक्षक स्तच्छिक्षयेह प्रस्ताव इत्यर्थे "

अर्थ—शिष्य दो प्रकार के जानने लायक हैं एक दीक्षा दिया हुआ शिष्य, दूसरा शिक्षा दिया हुआ शिष्य, यहाँ शिक्षा शिष्य का प्रस्ताव है (सुगडाग टीका मुम्बईकी छपी पृष्ट ९१०)

जैन ठाणांगसूत्रमें चार प्रकारके शिष्य कहे हैं.

" प्रव्राजनान्तेवासी नाम का एक, " जो गुरुके पास व्रत नियमादि न लेते, गुरुसे दीक्षा ले कर, आजन्म गुरु के पास रहे वह दूसरा उपस्थापनान्तेवासी, अर्थात् गुरुसे दीक्षा न लेते केवल व्रत

नियम लेनेवाला तीसरा प्रव्राजनान्तेवासी, भी व उपस्थापनान्तेवासी भी अर्थात् दीक्षा व व्रत दोनों ग्रहण करनेवाला, चतुर्थ धर्मांतेवासी अर्थात् दीक्षा व व्रत न ग्रहण करते धर्मोपदेशसे प्रबुद्ध हुआ हो जिसका मूलपाठ यह है

" चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तंजहा, पव्वायणांतेवासी णाम मेगे, उवट्ठावणा तेवासी ३ धम्मंतेवासी ४ टीका—अंते' गुरो समीपे वस्तुशील मस्यान्तेवासी, शिष्य प्रव्राजनया दीक्षया अंतेवासी दीक्षित इत्यर्थ उपस्थापनान्तेवासी व्रतारोपणत शिष्यइत्यर्थ —चतुर्थभंगस्थ धर्मान्तेवासी धर्म प्रतिबोधनत शिष्यो धर्मार्थितयो पमपन्न इत्यर्थ

(कलकत्तेका छपा पृष्ट २८२)

जैन धर्ममे आचार्य (गुरु) चार प्रकार होते है.

" एक व्रतादिधर्मकृत्य न कराते केवल दीक्षा देनेवाले आचार्य १ दूसरे उपस्थापनाचार्य अर्थात् दीक्षा न देते केवल व्रत नियमादि धर्म कृत्य करानेवाले आचार्य २ तीसरे प्रव्राजनाचार्य व उपस्थापना चार्य अर्थात् दीक्षा व व्रत दोनों कृत्य करानेवाले आचार्य ३ चतुर्थ धर्माचार्य याने दीक्षा व व्रत न कराते केवल धर्मोपदेशसे प्रतिबोध करनेवाले (पृष्ट २८२ ठाणागसूत्र)

इसका मूल पाठ

" चत्तारिआयरिया पण्णत्ता तंजहा, पव्वायणायरिए नाम मेगे णाउवट्ठावणायरिए १ उवट्ठावणायरिए नाम मेगे णो पव्वावणायरिए २

एगे पव्वावणायरिएवि उवद्वावणायरिए वि ३ एगे णो पव्वायरिए णो उवट्ठावणायरिए धम्मायरिए ४ (आहच) धम्मोजेणुवइट्ठो, सो धम्मगुरु गिहिं वसमणोवा-कोवि तिहिं सपउत्तो, दोहि वि एक्केकगेचेव अर्थात् जिसने धर्मोपदेश दिया है वही धर्म गुरु है चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ हो, कोई तीनों प्रकारका होता है कोई दो प्रकार का होता है कोई एक एक प्रकार का होता है

शिष्यशब्द की व्याख्या.

अमर कोष के द्वितीय कांड के ब्रह्मवर्गमें शिष्य के नाम तीन बतलाये हैं " छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये " इस की संस्कृतमें टीका लिखी है कि " छात्र अन्तेवासी (अन्तेवासीत्यपि) शिष्य त्रीणि-गुरो र्दोषाच्छादन तच्छीलमस्य छात्र, शील मनुवर्तमाने छत्रादिभ्योण इतिणप्रत्यय अन्ते समीपे वस्तु शील मस्याऽते वासी "

इस का आशय है कि, शिष्य के नाम तीन हैं छात्र अन्ते वासी (अन्तवासी) और शिष्य छात्र याने गुरु का दोष ढांकने वाला, अन्तेवासी या अन्तवासी अर्थात् पास रहने वाला और शिष्य, शिक्षा ग्रहण किया हुवा

हेमचन्द्र कोषमें शिष्य के वास्ते

शिष्यो विनेयोऽन्तेवासी—ऐसा लिखा है अर्थात् शिष्य शिक्षा ग्रहण करने वाला, विनेय याने विनय करने वाला, व अन्तेवासी, अर्थात् पास रहने वाला

जैन शास्त्रोंमें शिष्य शब्द का बोध यथार्थ होने के लिये शिष्य के स्थान पर अन्तेवासी शब्द का उल्लेख किया है और यह शब्द बहुत ही सार्थक मानकर जैन शिष्यों के लिये अन्तेवासी शब्द का ही प्रयोग किया है देखो कल्पसूत्रमें

" समणस्स भगवओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स, अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायण गुत्ते थेरस्सण अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणस्स गुत्तस्स अज्जजंबूनामे थेरे अंतेवासी कासवगुत्तेण थेरस्सण अज्जजंबूनामस्स कासवगुत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणस्स गुत्ते थेरस्सण अज्जप्पभवस्स कच्चायणस्स गुत्तस्स अज्जसिज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपियावच्छसगुत्ते " इत्यादि

अर्थ—श्रमण भगवान् काश्यपगोत्रीय महावीर के अन्तेवासी, अग्निवेश्यायन गोत्रीय सुधर्मस्वामी— अग्निवेश्यायन गोत्रीय स्थविर आर्य सुधर्म के अन्तेवासी, काश्यपगोत्रीय आर्यजंबूस्वामी—काश्यपगोत्रीय आर्यजंबूके अन्तेवासी, कात्यायन गोत्रीय आर्यप्रभव आर्यप्रभव के अन्तेवासी, मनकपिता वत्सगोत्र आर्य शय्यंभव इत्यादि

इस तरह जैन शास्त्रोंमें जहा जहा शिष्य नाम आये हैं, वहा वहा शिष्य शब्द की जगे अन्तेवासी शब्द ही लिखा गया है किसी आचार्य से या गुरु से शिरमुंडा लेनेसे, या कोई से धर्म ग्रहण कर लेने से, अथवा महीने दो महीने या वर्ष दो वर्ष गुरु के समुदाय में रहने से अन्तेवासी नहीं हो सकता जो आजन्म गुरु की सेवा तन मन से करता है, गुरुका हित करता है गुरु के पास सोता बैठता है, गुरु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करता है, उस को ही यदि गुरु प्रसन्न हो, तो अपना उत्तराधिकारी बना सकता है परतु यदि उस को भी गुरु योग्य न देखे, तो दूसरे किसी को, चाहे

जिसको गुरु अपना पद दे सकता है. चेलों को गुरुसे कुछ लेने का या मागने का कोइ हक्क सबब या अधिकार नहीं है ऐसा जैन ग्रंथोंमें स्थान स्थान पर उल्लेख है

शिष्य यह एक गुरु का दास है गुरु जब चाहे उसे अपने पास से निकाल दे और गुरु जब चाहे अपने पास रखले गुरु पर शिष्य का कोई हक नहीं. यति का नाम कोषोंमें " मुमुक्षु " श्रमण यति वाचयम व्रती-साधु-अनगार ऋषि निग्रंथ, और भिक्षु ऐसे अनेक नाम है इनमें यतिको अनगार याने घर रहित, व निर्ग्रंथ याने कोई प्रकारका द्रव्यादि पास न रखने वाला व भिक्षु याने भिक्षा मागने वाला है ऐसा यति का कर्तव्य बताया है ऐसी अवस्थाम गुरु की आज्ञा या अनुमति सिवाय शिष्य को कैसे कोई पद या अधिकार मिल सकता है गुरु केवल धर्मोपदेशक होता है

शिष्य के लक्षण उत्तराध्ययनसूत्रमें पृष्ट ३३५

वसे गुरुकुले निच्च, जोगव उवहाणव । पियंकरे पियवाई स सिक्खलद्धु मरिहई

उत्तराध्ययन कलकत्ता छापेकी अध्यन ११ गाथा १३ वीं

- ■ मुनि शिक्षा लब्धु महति शिक्षायै योग्यो भवति स इनिक यो गुरुकुले नित्य वसेत, गुरो पूज्यस्य, विद्या दीक्षा दायकस्य वा, कुले गच्छे, समाटकेवा यावज्जीव तिष्टेत् पुनर्या मुनि योंगवान् योगोधर्मव्यापार स नियमेयस्य स योगवानि अथवा योगोऽष्टाङ्ग लक्षण स्तद्वान् इत्य

पुनर्य साधु उपधानवान उपधान अङ्गोपाङ्गादाना सिद्धान्ताना पठनाराधनार्थ माचाम्लोपवास निर्विकृत्यादलक्षण तपोविशेष, स विद्यते यस्य स उपधानवान् सिद्धान्ताराधनोपयुक्त इत्यर्थ पुनर्य साधु प्रियकर आचार्यादीना हितकारक., पुनर्य प्रियवादी, प्रियोवादोऽस्यास्तीति प्रियवादी, एतैर्लक्षणैर्युक्तो मुनि शिक्षा प्राप्त योग्यो भवति

He who always* acknowledges his allegiance to his teacher who has religious zeal and ardour for study, who is kind in words and actions, deserves to be instructed (14)
Sacred books of the East vol (XLV Page 47)

आशय—वह मुनि शिक्षा पाने योग्य है—जो गुरुक कुलमें अर्थात् विद्या या दिक्षा देनेवाले पूज्य गुरुके समुदायमें यावज्जीव रहताहो और, जो मुनि धमत्याचार वालाहो, अष्टयोग साधन करने वाला हो, आचार्यादिक का हित करनेवाला व प्रिय बोलनेवाला हो वह शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होता है

योग्या योग्य शिष्यकी व्यवस्था उत्तराध्ययनमें

१ जो शिष्य अपने गुरु का आज्ञाम कायम रहता है व नित्य गुरु के दृष्टिगोचर रहकर शिर झुकाता है वह अच्छे चलन वाला चेला समझा जाता है

* Literally, who always remains in his teacher's kula

२ परन्तु जो शिष्य अपने गुरु की आज्ञापर चलता नहीं, और गुरु की दृष्टि से दूर रहकर सन्ताप देता है व गुरु के प्रतिकूल होकर गुरुका छिद्रान्वेषी होता है वह अयोग्य शिष्य है

३ जैसे सड़े कानवाली कुत्ती सब जगह से निकाली जाती है, उसी तरह इस प्रत्यनीक (प्रतिकूल) को भी निकाल देना चाहिये

A monk who, on receiving an order from his superior, walks up to him, watching his Nods and Motions, is called well behaved (2)

But a monk who, on receiving an order from his supe ior, does not walk up to him, being insubordinate and inattentive, is called ill-behaved (3)

As a bitch with sore ears is driven away every where, thus a bad, insubordinate and talkative (pupil) is turned out (4)

Sacred books of the East vol XLV Page 2 1

योग्य शिष्यः

हेमचन्द्र स्वामीने अपने योग्य शिष्यको उत्तराधिकारी बनाया

देखो प्रभावक चारित्र

राजा श्री सिद्धराजेना न्वदाच्च युयुजे प्रभु । भवना कोटि पदस्य योग्य शिष्यो गुणाधिक १२९ तम स्माक दर्शयत चित्तोकार्य

मा मित्र अपुत्रमनुकपाह पूर्वेषा मास्य शोचयन् १३० आह श्रीहेमचद्रश्च न को येनहि चिन्तक । आचोप्यम् दिलापाल सत्पात्राभोनिचद्रमा १३१ सज्ञानमहिमस्थैय मुनीना किम जायते, कल्पद्रुममिते यत्रि त्वयीदृशि क्षत स्थितो १३२ अन्या मुख्यायणो राम चन्द्राख्य इति सोदर ॥ प्राप्तरेख प्राप्तस्य सघे विश्वकन्यापिधे १३३ (प ११९७)

अर्थ

एक दिन राजा सिद्धराजने प्रभु हेमचन्द्रसूरिसे कहा कि आपका कौनसा शिष्य गुणोंमें अधिक पात्र स्थपक है मुझे अपुत्रिक व अनुकपा के लायक मानकर चित्त उत्कर्ष के लिये पूर्वके लोगों का शोच न करते मुझे उस शिष्य को दिखाये हेमचन्द्र बोले हे सत्पात्र के समुद्र या चन्द्र पृथ्वीपाल पहिला (तू) है, वैसा तो कोई भी हितचिन्तक है नहीं कल्पवृक्षके समान तेरे सरखा राजा के होते मुनियों के ज्ञान सहित महिमा की स्थिरता क्या नहीं होगी? हमारे गणका व चन्द्र के समुदायमें कार्य करने वाला मुख्य नाम पाया हुआ, व सुन्दर स्वरूप पाया हुआ रामचन्द्र नाम का (शिष्य) है

योग्य शिष्यः

गुणाकरसूरिने अपने योग्य शिष्य कालसूरि को उत्तराधिकारी बनाया प्रभावकचरित पृष्ठ ३८

"स्वे पट्टे कलक योग्य प्रतिष्ठाप्य गुरुस्तत श्रीमान् गुणाकर सूरि प्रेत्यकार्याण्यसाधयत् २९.

अर्थ

श्रीमान् गुणाकर सूरि ने अपने योग्य शिष्य (लायक शिष्य) को अपने पाटपर बैठा कर आपने परलोक साधन किया

आर्य सुहस्तीने भी अपने श्रेष्ठ शिष्य को ही उत्तराधिकार दिया

परिशिष्ट पर्वन् पृष्ट २९३ स्थविराजी हरमन जाकोबी की कल्कत्तेकी मुद्रित "भगवा नार्य सुहस्त्यपि गच्छ, समये वर शिष्याय समर्प्य विहितानशन स्त्यक्ता देह, सुरलोका तिथिता प्रापेदे आर्य सुहस्ती का मृत्यु वीर निर्वाण स २९१ में हुवा

अर्थ

" भगवान् आर्य सुहस्ती भी समय (अन्तकाल के समय) म श्रेष्ट शिष्य को गच्छ (समुदाय) सुपुर्द कर आप अनशन अर्थात् (अन्न पान का त्याग) कर देवलोक के पाहुना हुये

जैन सम्प्रदायमें चेले के लिये शिष्य-छात्र विनेय अन्तेवासी वगैरे बहुत से शब्द हैं. उनमें अन्तेवासी यह शब्द बडे महत्व का है अथात् जो शिष्य गुरु के पास आजन्म पर्यन्त रहकर, गुरु का छिद्र ढाके, गुरु की आज्ञा पाले, गुरु का हित करे गुरु की सुश्रषा करे, गुरु की आज्ञा उल्लघन न करे, धर्मवृत्ति से गुरु के कुल की मर्यादा रखे, ऐसे सद्गुणी शिष्य को गुरु योग्य समझता है और उस का योग्य आदर करके गुरु अपना उत्तराधिकारी बनाने की भी कामना रखता है •

शिष्य शब्द के बोध के लिये बहुत प्राचीन काल से अन्तेवासी शब्द जैन संप्रदायमें प्रसिद्ध है इसवी सन के पहिले शताब्दी के आस पास शिष्य को बहुधा अन्तेवासी ही लिखते थे देखो पभोसा और मथुरा के जैन लेख और महाक्षत्रप शोडास के लेख, जो रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाने राजपूताना म्यूजियम अजमेर " में " भारतीय प्राचीन लिपि माला ' नाम का ग्रंथ छापा है उस के पांचवें प्लेट की नकल इस ग्रंथ के पृष्ठ ९३ ९४ में है यह प्लेट ब्राह्मी लिपि का है इसमे " अन्तेवासी " शब्द है इसकी नकल नीचे प्रमाणे है

(१) " नमो अरहतो वर्धमानस्य गोतिपुत्रस पोथशकस
(२) ळस कोशिकिये शिमित्राये आयागपटोप
(३) समनस महारखितास आतेवासी वच्छीपुत्रस सावकास
(४) उतरदासकस पसाद तोरन अधिठनापा राजेशोन
(५) कापनपुत्रस्य रजे (जो) तेरणी पुत्रस्य
(६) भागवतस्य पुत्रेण वैहिदरीपुत्रेण अ (आ) षाढसेनेन कारित

इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि, पुराणे जमानेमें जो शिष्य अपनी जिंदगी गुरु की सेवामें आजन्म बिताता था वह अन्तेवासी गिनाजाता था और वैसे ही को गुरु प्रसन्न हो कर अपना अधिकार भी देता था

आर्य महागिरिने अपने छोटे भाई को उत्तराधिकार दिया

आर्यमहागिरि आचार्य के, बहुत से शिष्य थे, तोभी उन्होंने शिष्यों को छोडकर अपने छोटे भाई आर्यसुहस्तिसूरि को, उत्तराधिकार दिया (वीर निर्वाण संवत् २४६, में परिशिष्टपर्व पृष्ठ २७७

योग्य शिष्यको अधिकार.

महावीर स्वामीके निर्वाण बाद ५८४ वर्ष बीते आर्यरक्षित सूरि हुये उनके गोष्ठामाहिल १ फल्गुरक्षित २ और दुर्बलिकापुष्प ३ ऐसे तीन चेले थे उनमेंसे सबसे छोटे शिष्य दुर्बलिका पुष्प को आर्य रक्षितसूरिने अपना स्थान दिया

उत्तराध्ययन कलकत्तेकी छपी पृष्ट १६४

योग्य शिष्य.

यति समदाय मे यह नियम है कि—गुरु पर शिष्यका कोई प्रकारका हक्क नहीं गुरु, यदि प्रसन्न होतो, चाहे, अनेक शिष्य हों तोभी, वह एकही शिष्य को, कि जो सदा गुरु सेवा में जीवन व्यतीत करे, उसीको उत्तराधिकारी बनावे यदि शिष्य एकभी योग्य नहीं होवे तो, गुरु अन्य धर्मीको भी धर्मोपदेश देकर जैनी करके, उसको अपना उत्तराधिकारी बना सकता है चेलोंका गुरु पर कोई अधिकार नहीं

गुरु का कर्तव्य. प्रभावक चरित पृष्ट २९८

देवचन्द्रसूरिके शिष्य हेमचन्द्रसूरि को सर्व शिष्योंमें मुख्य मान

देवचन्द्रसूरिने अपना उत्तराधिकारी बनाया उसका वृत्त

प्रभावक धुरधुर्य मम सूरिपदोचितम् । विज्ञाय सत्र सामन्य गुरवोऽमत्रय न्निति ४७ योग्य शिष्य पदे यस्य स्वकार्य कर्त्तुमौचिती । असमन् पूर्वऽमु साचार सदा सिद्धिन पूर्विण ४८ श्री गौतमादि सूरीणां शासन मनाशिनम् । श्रीदेवचन्द्रगुरुन सूरिमन्त्र मचीकरन् ४९

अर्थ—इनको (हेमचंद्रसूरिको) प्रभावकको धुरा संभालने वाले और सूरिपद के लायक जानकर, गुरु (देवचंद्रसूरि) ने सर्वसमुदाय को बुलाकर कहा, कि, योग्य शिष्यको पाट पर रखकर अपना कार्य करना उचित है व यही आचार हमारे पूर्वजोंने हमेशा किया है व गौतमादिगणधरो ने बिना बाधा आराधन किया है ऐसा कहकर देवचंद्र गुरुने हेमचन्द्रसूरिको सूरि मंत्र कहा और अपना उत्तराधिकारी बनाया

यति के लक्षण.

नीति वाक्यामृत (संवत् १०८४)

सोमदेवसूरि कृत

"य सम्यग् विद्यानौ लाभेन तृष्णा सरित्तरण प्रयोगाय यतते सयति पृष्ठ ८

अर्थ—जो अच्छा विद्यारूपी नावके लाभसे तृष्णानदीके तिरने के काम में यत्न करता है वह यति है

नीतिवाक्यामृत पृष्ठ ११

गुरुजन शाल मनुसरन्ति प्रायेण शिष्याः

अर्थ—प्राय करके चेले गुरुजन का ही अनुसरण करते हैं

यति के लिये प्रायश्चित्त

नीतिवाक्यामृत पृष्ट १७

जिनागमोक्त मनुष्ठान मेव समस्तयतीना स्वोधर्म, धर्मव्यतिक्रमे यतीना जिनागमोक्त मेव प्रायश्चित्तम्.

अर्थ—जैनागममें कहा हुवा अनुष्ठान ही सर्वयतियोंका स्वधर्म है धर्म का मार्ग छोडनेसे जैनशास्त्र में कहा हुवा ही प्रायश्चित है

॥ गुरु कोप शान्तिः ॥

नीतिवाक्यामृत पृष्ट २०

प्रणामावसान कोपो गुरुणाम् गुरूणांकोप प्रणामपर्यन्त एव, प्रणामानन्तर प्रसाद

अर्थ—गुरुका कोप प्रणाम पर्यंत ही है प्रणाम के पीछे प्रसन्नता है

संस्कार विहीन शिष्य

नीतिवाक्यामृत पृष्ट ९३

स्व जातियोग्य संस्कार हीनाना, राज्ये प्रव्रज्याया, नास्त्यधिकारः,

अर्थ—अपनी जाति के योग्य संस्कार विना राज्यमें व दीक्षामें अधिकार नहीं।

शिष्य दोष प्रतीकार

नातिवाक्यामृत पृष्ट १०१

मद प्रमादजे दोषे, गुरुषु निवेदन मनुप्रायश्चित्तच प्रतीकार —
मद व प्रमादसे हुये दोषोंमें गुरुसे निवेदन करना बाद प्रायश्चित्त
करना यह प्रतीकार है

केवल शिष्यही अधिकारी है

यति सम्प्रदाय में केवल शिष्यही अधिकारी होता है

शिष्य सिवाय दूसरा अधिकारी होता नहीं देखो सोमदेवसूरि
कृत "नीतिवाक्या मृत" मुम्बई आवृत्ति पृष्ट १३९

"देश कुलापत्य स्त्री समयापेक्षो दायाद विभागोऽन्यत्र यति
कुलात् तत्रैक एवभवति सम्प्राहं"

अर्थ—यति कुलसे अन्यत्र, देश कुल अपत्य व स्त्री का
दायादका विभाग समय की अपेक्षा से होता है

टीका—दायाधिकारिणो न सर्वेषु देशेषुच समाना यथा
केरल देशे सत्यपि पुत्रे भगिनेय एव दायाधिकारी नान्य । एव मेव
केषुचित्कुलेषु दौहित्र ॥ यति कुले जैन धर्मीय यति (भाषाया जती)
कुले शिष्य एवाधिकारी

अर्थ—दायाधिकारी सर्वदेशमें समान नहीं होते जैसे केरल
देशमें पुत्र होनेभी, भागनेय ही दायाधिकारी होता है, दूसरा नहीं
इसी तरह कोइ कुलमें दौहित्र, और यतिकलमें, याने जैन धर्मीय जती
कुलमें, शिष्यही अधिकारी होता है

शिष्य के बारेमे गुरुका अंगीकार वसहे. वीरचरितमें व भगवती सूत्रके शतक १५ उद्देश १ में



एक गोशाला नामका महावीरस्वामी का चेला था उसका वृत्तान्त है कि, गोशाला को महावीरस्वामीने न तो दीक्षा दी थी, न व्रतादि ग्रहण कराया था, न विद्या पढाया था न धर्मोपदेश दिया था और न कभी वासक्षेप मस्तकपर किया था केवल गोशाला की विज्ञप्तिका अनादर न किया, इतनाही महावीरस्वामी का स्वीकार था इसपर से गोशाला महावीर का शिष्य था ऐसा मानाजाता है उस बारेमें लिखा है कि " गोशाला ने महावीरस्वामीसे कहा था " कि आप मुझे शिष्य मंजूर करें यावज्जीव मेरे गुरु होवें आपके बिना हे परमेश्वर! मे किंचिन्मात्र भी नहीं रह सकता आप वीरागी हो, आप पर स्नेह कैसा? एक हाथसे ताली नहीं बजती किंतु स्वामिन् मेरा मन जबरदस्ती आप के तरफ दौडता है

फिर गोशालाने कहा " आपने मुझे अंगीकार कर लिया है, यह मैं जानता हूं तो भी, आप अपने विकसित कमलसदृश नेत्रों से मुझे देखें " भगवान् वीरागी थे, और होने वाला अनर्थ जानते हुये थे, तोभी, भगवान ने गोशाला का वचन स्वीकार किया महात्मा पुरुष किसपर नहीं स्नेहयुक्त होते!" ऐसा वीर चरित, व भगवती सूत्रमें उल्लेख है भगवती सूत्रमें इसका विस्तार अधिक होनेसे यहां नहीं

लिखा सो जिज्ञासु मूल ग्रंथ मागधी देखें. वीर चरित्र का मूल संस्कृत इस प्रमाणे है

हेमचन्द्रसूरिकृत वीरचरित जन्म ११४५, आ ११६७

शिष्यस्नेह भविष्यामि त्वमेव शरण मम ।
इत्युक्तो स मया चक्रे तृणाद्वो स्यात् प्रभु. पुन ॥ ८६ ॥
गोशालो भिक्षया प्राणवृत्तिं कुर्वन् दिवा निशम् ।
नामुञ्च स्वामिन पार्श्व स्वबुद्धया शिष्यतां ब्रुवन् ॥ ८७ ॥
प्रतिपद्यन्ते सा शिष्य यानजीवनू गुरु भेव ।
दा भिन्ने यपि स्यातु नर्मे परमेश्वर ॥ ९ ॥
नीरागे त्वयि क द्वेषो नै क हस्ता हि तालिका ।
स्वामिन मम मन निन्दु करो ला मनुशासनि ॥ १० ॥
स्वपा म्युपगम स्वतु आनाम्ये प तथापि हि ।
नीरागेन्सदृष्या दशा मा प निरीक्षसे ॥ ११ ॥
नीरागोपि मान्यलर्य तद्वचश्च निदनपि ।
तद्वच प्रत्यपादी नो महान्त क न यमला ॥ १२ ॥

जैन धर्ममें शिष्यों के अनेक गुरु

कोई पालन करने से, कोई विद्याभ्यास कराने से, कोई पदवी दान देने से, कोई दीक्षा देनेसे, कोई व्रतनियमादि कराने से, ऐसे अनेक गुरु होते हैं

एक शिष्य के दो गुरु होने के प्रमाण

द्विगुरुः

स्थूलभद्र के दो गुरु थे दीक्षागुरु सम्भूतिविजय, दूसरे भद्रबाहु, गुर्वावली काशीस्थ यशोविजय पाठशाला मुद्रित पृष्ठ ४

" सम्भूति विजय नामा तस्यविनेय स्त्वोतु श प्रथमः य त्पदपद्मोपान्ते प्रव्रजित स्थूलभद्रगुरु " अर्जिम पूर्वभृता द्वितीयो श्रीभद्रबाहु श्च गुरु शिवाय । कृतोपसर्गाहरस्तव यो रक्षसत्र धरणार्चिताङ्घि १२ निर्यूढ सिद्धान्तपयोधि राप स्वर्यश्च वीरात् खनगेन्दु (१७०) वर्षे । तयोर्विनेय कृपानिधभद्र श्रीस्थूलभद्रश्च ददातु शर्म १३

अर्थ

उन (यशोभद्रसूरि) के प्रथम शिष्य सम्भूतिविजय, मगल करो कि जिन के चरण कमल के निकट स्थूलभद्रगुरु ने दीक्षा ली दूसरे पूर्वधारियोंमें मुख्य श्रीभद्रबाहुस्वामी, मगल करो कि जिन्होंने धरणेन्द्र चरण पूजित उपसर्गहरस्तोत्र से श्रीसघ (समुदाय) की रक्षाकरी और प्रव समूह को मथनकर महावीरस्वामीके निर्वाण के १७० वर्ष बीते, स्वर्ग गये इन जगत् के कल्याण करनेवाले दोनों (सभूतिविजय व भद्रबाहु) के शिष्य स्थूलभद्र सुख देवो

8 Bhadrabahu, He succeeded Sambhuti Vijay although he was not his disciple, but a brother disciple

Epitome of Jainism,
(page 666)

द्वि गुरुः

अभयदेवसूरी के दो गुरु थे एक जिनेश्वरसूरि व दूसरे बुद्धिसागर

यह बात खास अभय देवसूरिने समवायाग सूत्रकी टीका का प्रशस्तिमें विक्रम सवत् ११२८ के सालमें लिखा है देखो

" निःसम्बन्ध विहार हारिचरितान् श्रीवर्द्धमानाभिधान् सूरीन् ध्यानवतोऽत्र तीव्र तपसो ग्रन्थप्रणीतिप्रभो ॥ श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो दर्प्पीयसा वाग्मिना तद्बन्धो रपि बुद्धिसागर इति ख्यातस्य सूरे र्भुवि ॥ शिष्येणा भयदेवाख्य सूरिणा विवृति कृता श्रीमत समवायाख्य तुर्यांगस्य समासत ॥

अर्थ

किसी प्रकार के सबन्ध बिना परिभ्रमणसे जिन्होंका मनोहारी चरित है ऐसे वर्द्धमानसूरि का ध्यान करने वाले व अतिकठिन तपस्या करने वाले व ग्रथ निर्माणमें निपुन व मदोन्मत्त वादीयों को पराजय करनेवाले श्रीजिनेश्वरसूरि व जगद्विख्यात बुद्धिसागर सूरि, इन दोनों के शिष्य अभयदेव नाम के सूरिने श्रीसमवायांग (चतुर्थांग) की टीका समास से करी है

जैन सम्प्रदायमे यह नियम है, कि जब कोई किसी साधु के पास विद्याभ्यास करता है या धर्मक्रियानुष्ठानादि करता है तब वह उसका शिष्य होता है शिष्य होने बाद अगर धर्मान्तर होकर साधु होना

चाहेतो, सब से पहिले अपने पासका सर्वद्रव्यादि पदार्थ त्याग करता है और कहता है कि " आज से मेने मेरा द्रिव्यादि पदार्थ त्याग किया व आगामी कालमें मैं भी कोई प्रकार द्रव्य ग्रहण करूंगा नहीं मुझे आप दीक्षा देकर मेरी आत्माका कल्याण करें मैं आपका आजन्म पर्यन्त दास रहूंगा ' ऐसी गुरु के समक्ष व पचों के समक्ष शिष्य प्रतिज्ञा करता है उस वख्त दीक्षा लेनेवाले के माता पिता, या कुटुम्बी होवें, वे,दीक्षा देनेकी गुरूको अनुमति देते हैं अगर माता पिता वगैरेन होवे तो उनके प्रतिनिधि दूसरे लोग होकर शिष्य को दीक्षा देनेकी गुरु को आज्ञा देते हैं तब गुरु उस को दीक्षा देता है और पात्र देकर, मागकर उदर पोषण करने की गुरु, शिष्य को आज्ञा देता है, तब शिष्य भिक्षा मागकर उदर पोषण करता है और आजन्म पर्यन्त गुरुपूजा याने गुरु शुश्रूषा करे, गुरु की आज्ञा जन्मभर उल्लंघन न करे, यावज्जीव गुरुका छिद्र ढाके, गुरुका मान सन्मान योग्य रीति से रखे गुरु की व गुरु के कुल की शोभा बढावें उस को गुरु, अपना योग्य अन्तेवासी समझता है परंतु इतने पर भी यदि गुरु का चित्त शिष्य से असतुष्ट हो तो वह उस चेले को निकाल कर, दूसरे, व्यस्थ को अपना शिष्य बनाकर उस को अपना अधिकार गुरु देसकता है

द्विगुरुः

ठाणागमसूत्रटीका प्रशस्तिमें अभयदेव के दो गुरु

चान्द्रकुलीनप्रणीताप्रतिबद्ध विहार चरित श्रीवर्द्धमानाभिधान मुनि पतिपादोपसेविन प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवण प्रकरणप्रबन्धप्रणायिन प्रबुद्ध प्रतिबन्धकप्रवक्तृप्रवीणाप्रतिहत प्रवचनार्थ प्रधान वाक्प्रसरस्य सुविहितमुनि

जनमुखस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य व्याकरणादिशास्त्रकर्तुं श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमल चञ्चरीककल्पेन श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराज सन्तानवर्तिना ठाणांगवृत्ति कृता.

अर्थ

चंद्रकुल के शास्त्रोंमें कहेहुये अप्रतिहत श्रमणचरितवाले श्रीवर्द्धमानसूरि नामके मुनि की चरण सेवा करने वाला, व प्रमाणादि की व्युत्पत्तिमें प्रवीण, प्रकरण प्रबंध करनेवाले, व विद्वानों के प्रतिबंधक वक्तृत्वकलामें निपुन, अप्रावृत शास्त्रमें उत्तमवाणी के फैलानेवाले, मुनिहित साधुओं का मुखिया, श्रीजिनेश्वराचार्य का, व व्याकरण शास्त्रों के कर्त्ता उनके छोटे भाई श्रीबुद्धिसागर इन के, चरण कमल के भ्रमरतुल्य, व महावीर जिनराज कुलानुयायी, में अभयदेवने ठाणांगसूत्रकी टीका बनाई

द्विगुरुः

अभयदेव सूरि के दो गुरु होने बदले पांचवा अंग भगवतीसूत्रकी टीकाकी प्रशस्ति का प्रमाणः, जो अभयदेवसूरिने वि. सं. ११२८ में बनाई है उसमें अभयदेवके दो गुरु लिखे है

" चान्द्रेकुले सदनकक्षकल्पे महाद्रुमो धर्मफलप्रधानात् । छायान्वित शस्तविशालशाखः श्रीवर्द्धमानो मुनिनायकोभूत् तत्पुष्पकल्पौ विलसद्विहारो सद्गन्धसम्पूर्ण दिशौसमन्तात् । अभूतां श्रीयतरागनाथ

२

वृत्तीश्रुतज्ञानपरागसन्तौ एकस्तयोसूरिवरो जिनेश्वरो, ख्यात स्तयान्यो भुविबुद्धिसागर। तयो र्विनेयेन विबुद्धिनाप्यल वृत्ति कृतैषा भयदेवसूरिणा

अर्थ

अच्छे निविडतृणतुल्य चन्द्रकुलमें धर्मरूप फलके प्रसादसे छाया युक्त प्रशस्त बडी बडी जिसकी शाखें है ऐसा वर्द्धमान मुनिनायक नामका विशाल वृक्ष था

उस वृक्षके पुष्पतुल्य देदीप्यमान श्रमणरूपी सद्गमें चारों दिशाओंमें व्यापनेवाले, व उदारवृत्ति के होकर, ज्ञानरूप परागवाले, दो शिष्य हुवे

एक सूरिवर्य जिनेश्वर, व दुसरा बुद्धिसागर, उनदोनों के शिष्य अभयदेवसूरिने, विशेष बुद्धि न होने भी, यह टीका बनाई है

द्विगुरुः

जिनचन्द्रसूरि कृत वीर चरित्र प्रशस्ति संवत् ११३९ कीमें. जिनचन्द्रसूरि के दो गुरु जिनेश्वरसूरि व बुद्धिसागरथे मी पीटरसन् का तृतीय रिपोर्ट पत्रलेख पृ. ३०८

बोहियोत्त्व समयो सूरि सूरी जिणेसरो पढमो। गुरु सारा ओ धवलाओ खरयमाहु सवई भाया ॥ हिमवताओ गगुव्व, निग्गया सयलजणपुज्जा अन्नोय पुन्निमाचद सुदरो बुद्धिसागरोसूरी निम्मविसपव-

रागारण, उभयोगमभमर्डे एगनरायाविग्गमिर पयवायकुरग सीहाण
तेसिं सीसो जिनचन्द सूरी नामा समुप्पन्नो

अर्थ

बोहित्थ की तरह समर्थ, पहिले जिनेश्वरसूरि हुये जिन्होंसे उज्वल खरतर सन्तति उत्पन्न हुई, और जो हिमालय से गंगा की तरह निकलकर सर्वजगत् के मनुष्यों के पूज्य हुये दूसरे भी श्रेष्ठ-व्याकरण छंद, प्रमुख ग्रन्थोंके निर्माता, एकान्त वादमें खेलते हुये चरणोंमें पडे हुये हरिणको सिंहके तुल्य, पूर्णचन्द्रवत् गुरु बुद्धिसागर सूरि हुये, इन दोनों के शिष्य जिनचन्द्रसूरि उत्पन्न हुये

द्विगुरु.

हरिभद्रसूरिके दो गुरु थे आनन्दसूरि व अमरचन्द्रसूरि

संवत् ११८०, से ११९३ तक

धर्माभ्युदयकाव्य उदयप्रभसूरि कृत

आनन्दसूरि रिति तस्य बभूव शिष्य पूर्वोऽपर श्चामरतोऽमरचन्द्रसूरि। यमद्विपस्य दशना विव पापदक्ष क्षोदक्षमौ जगति यौ विशदौ विभात २ अम्भाधनात्मयपयोनिधिमन्दराद्रि मुद्राजुष किमनयो स्तुमहे महिम्न। बाल्येपि निर्दलितवादिगजौ जगाद यौ व्याघ्रसिंह शिशुका विति सिद्धराज ४ सिद्धान्तोपनिषन्निषण्णहृदयो धीजन्मभूमिस्तयो पट्टे

श्रीहरिभद्रसूरि रभत् चारित्रिणामग्रणी भ्रान्त्या शून्य मनाश्रये रात्रिचिरा य मित्रवरस्तेन। सतुष्ट्रे कलिकालगौतम इति ख्याति र्मितेने गुणैः ९.

अर्थ

उनका पवित्र शिष्य आनन्दसूरि इस नाम का हुआ दूसरा चारित्रधारण करनेवाला अमरचन्द्रसूरि हुआ जो जगत्में धर्मरूपहाथी के दान के तुल्य पापवृक्षके उखाडनेमें निर्मल मालुम होता है पापरूप प्रवरसमुद्रको लाने के लिये मेरुपर्वतकी मुद्रा को प्रसन्नकरने वाले इन दोनोंकी महिमा की स्तुति कहातक करें कि- जिन्होंने बाल्यावस्थामें ही वादी हाथियों को जीते और जिनको सिद्धराजने व्याघ्रसिंह शिशु ऐसा कहा है ४

द्वि गुरु.

चन्द्रसेन सूरिके दो गुरु थे प्रद्युम्नसूरि और हेमसूरि

उत्पाद सिद्धिनामक प्रकरण सटीकम्।

श्रीचन्द्रसेनकृत सवत् १२०७

श्रीमाश्चन्द्रकुले सद्गुणगणनिधि प्रद्युम्नसूरि प्रभु
र्मे गुर्वस्य स सिद्धहेमनिधये श्रीहेमसूरि र्निधि ॥
तच्छिष्यावयवोत्र सूरिरजनि श्रीचन्द्रसेना भिध
स्तेनेत्थम्विन प्रकाशपदवीं नेय पुन साधुभि ॥
कृत्वा प्रकरणमेत यत्कुशल मिहार्जितं मया किंचित्।

नम्मा सत्वैकरुचि भैरव जन सिद्धिमद्वोर ॥
द्वादशसु शतेषु श्रीविक्रमतो गतेषु मुनिभिश्च । (सं० १२०७)
चैत्रे समस्तमिदं साहाय्यं चात्र मे नेमे ।

(शान्तिनाथ के भण्डारका ताडपत्र जैन ग्रन्थावली पीटर रिपोर्ट भा० ३ पृ० २०९) श्रीमान चन्द्रप्रभ, गुण के निधान, प्रद्युम्नसूरि हुये । उन के गुरु, हेमसूरि हुए उन दोनों के शिष्य श्रीचन्द्रसेनने, यह प्रकरण रचा व साधुओंने प्रकाश पन्थी को पहुंचाया यह प्रकरण मैंने बनाकर जो कुछ कल्याण उपार्जन किया है उस से तत्त्वरुचिवाले सज्जन सिद्धि के श्रेय जो चाहते होवें विक्रम के गत संवत् १२०७ के चैत्रमें यह समाप्त हुआ इसमें नेमिनाथ का मुझे सहाय्य था।

द्वि गुरु.

हेमहंस गणिके दो गुरुथे मुनिसुंदर गुरु और रत्नसागरसूरि न्यायार्थ मंजूषा हेमहंसगणि कृत

"श्रीसूरीश्वर सोमसुन्दर गुरो निःशेष शिष्याग्रणी गच्छेन्द्र प्रभुरत्नशेखर गुरु र्दीप्यते साम्प्रतम् । तच्छिष्याधमहेमहंसगणिना न्यायार्थ मंजूषिका वक्षस्कार इहान्तिमोऽनुविहित सन्न्यायरत्नै र्भृत श्रीमच्चारुचन्द्र पुत्र जनि जाग्रच्चन्द्रो गुरु र्यन्नपा चार्यरत्नानि सताप तीव्रतपसा तस्यान्वये जायते । श्रीश्रीचरदेवसुन्दरगुरु स्वदृढ पूर्वा गिरे, रागे श्रीप्रभुसोमसुन्दर गुरु र्भानु र्नवीनो भवन् । यत, भानो भानुशतानि षोडश तमस्न्ये तत्र मास्या श्रिते । य च्छिष्या स्वतो

ऽधिका अपि महीं सुवोनयन्ते सदा । तस्या ह चरणा नुवामिनिमत्ता श्रीमत्तपाग ऽप क्षोणीविभुन सोमसुन्दरगुरो श्चारित्रि चूडामणे

अपिच

मारि येन निवारिता सुरकृता सस्प शान्तिस्तव सश्रीमान् मुनि सुन्दराभिधगुरु र्दीक्षागुरु में भवन् । यस्य व्यासमरस्वतीति विरुद निर्यात सुवीं तले गुर्वी श्रीजयचन्द्रसूरि गुरु रथा ात् प्रमत्तं हमे९

इति श्री तपागच्छपुरंदर श्रीसोमसुन्दर स्वदीक्षा गुरु श्रीमुनि सुदरसूरि श्रीजयचद्रसूरि प्रमुख श्रीगुरु सावन विद्यमान श्रीगच्छनायक परमगुरु श्रीरत्नशेखरसूरि चरणकमल सेविना महोपा पाय श्रीचारित्रगणि प्रसाद प्राप्त विद्या ल्वेन वाचक श्रीहेमहंस गणिना स्वपरोपकाराय सवत् १५१० वर्ष ज्येष्ठ सुदि द्वितीयायां न्यायार्थ मञ्जूषा नाम्नी बृहद्वृत्ति श्रि नन्दनात् एकस्यू लेख से पृष्ठ १७१८

अर्थ हिन्दी

श्रीसोमसुन्दरसूरि गुरु व सवश्रेष्ठों में अग्रगी प्रभु रत्नशेखर इस समय विद्यमान गच्छनायक ह उनके शिष्य हेमहंसगणिने अच्छे रत्नोंसे भरी हुई न्यायार्थमञ्जूषिका (न्यायके अर्थकी पेटी) का आवेर का चतुर नमस्कार पूर्ण किया

पहिले श्रीमान् चन्द्रकुलमें श्रीजगच्चन्द्रगुरु हुये, जिन्होंने कठिन तपश्चर्या मे तप प्रसिद्धि पाये, उन के कुलमें निपुण श्रीदेवसुदर गुरु हुन, उन के पाटरूपी पर्वतराज (पर्वत) के शिखरपर नवीनसूर्य श्रीसोमसुदर गुरु हुय.

कारण

एक आश्विन महीनामें ही सूर्यकी १६०० किरणें प्रकाश करती हैं और इनके (सोमसुंदर के) शिष्य तो उनसे भी अधिक सदा पृथिवी को प्रकाशित करते हैं उन श्रीतपागच्छ पालक, जगत्प्र सिद्ध चारित्रचूडामणि श्रीसोमसुन्दर के चरण का उपासक और भी जिन्हों ने शान्तिस्तव (स्तोत्र) रचकर देवता की की हुई महामारी का निवारण किया, वह श्रीमान् मुनिसुन्दर नाम का गुरु मेरा दीक्षा गुरु था वो, व जिसका " कृष्णसरस्वती " ऐसा बिरुद पृथ्वीके तलभाग पर प्रसिद्ध हुवा है, वह, जयचन्द्रसूरि भी, मुझे बडीभारी प्रसन्नता दे वो

यह श्रीतपागच्छ के इन्द्र श्रीसोमसुन्दर स्वदीक्षा गुरु श्रीमुनि सुन्दरसूरि श्रीजयचन्द्र गुरु प्रमुख श्रीगछ साम्प्रतविद्यमान श्रीगच्छनायक परमगुरु श्रीरत्नशेखर सूरिके चरणकमल की सेवा करनेवाले महोपाध्याय श्रीचारित्र गणि के प्रसादसे पाया हुवा विद्याका लव (लेश) वाचक हेमहंस गणिने स्वपरोपकार के लिये सवत् १५१५ के साल के ज्येष्ठ शुद्ध द्वितीया के दिन न्यायार्थ मञ्जूषा नामका बडी टीका बहुत काल आनन्दित रहो

---

८ द्वि गुरु

सोम धर्मसूरि के दो गुरु थे चारित्ररत्नसूरि व उदयशेखरसूरि
उपदेश सप्तति, सोमधर्मसूरि कृत सवत् १५०३

जयन्तु ते वाचक पुङ्गवा श्री चारित्ररत्नागुरवो मदीया ।
पद्मागिना यर्य विनेयवारा कुवन्त्यनेका उपकारकोटि १६ तद्भ्रातर

सकल कोविदमाननीया पूज्या जयन्त्युदयशेखर पण्डितेन्द्रा । जन्हे ममापि जडिमा हृदयप्ररूढा भास्वद्धि रामशुचिगोभि रनुत्तराये १७ तयो पदाम्भोरुहचञ्चरीक शिष्योऽभवन् पण्डित सोमधर्मः । शास्त्राणि भूयास्यपि यो बभाण मर्माणि तेषा न विवेद किन्तु १८ उपदेश सप्तति रिय, रचिरागुण विन्दुबाणचन्द्रमिते १५०३ वर्षेऽनेनप्रथिता इलार्थनीया ऽपि बुधधुर्य्य १९

अर्थ

जिनके पढाये श्रेष्ठ शिष्य समुदाय, करोडा उपकार करते हैं वे मेरे गुरु, वाचक श्रेष्ट, चारित्ररत्न विजयी होवें उन के बन्धु सकल पण्डित माननीय पण्डितचन्द्र, उदयशेखर कि जिन्हों ने दैदीप्यमान व अनुत्तर अपनी पवित्र वाणियों से मेरे भी हृदयमें रही हुई जडिमा हरण किया, उन दोनों (चारित्ररत्न व उदयशेखर) के चरण कमल का खजन शिष्य पण्डित सोमधर्म, जो बहुत से शास्त्रों को पढा, किन्तु उन्हों का मर्म न जाना इसने श्रेष्ट विद्वानों की प्रार्थना करने से यह मनोज्ञ उपदेश सप्तति सवत् १५०३ के वर्षमें गूंथी

द्वि गुरु

शीलरत्नसूरि के दोगुरु थे मेरुतुङ्गगणि व जयकीर्त्ति स १४९१

मेरुतुङ्गसूरि व जयकीर्ति सूरि यह शीलरत्नसूरि कृत मेघदूत टीका की प्रशस्ति से बोध होता है कि शीलरत्नसूरि के दीक्षा गुरु मेरुतुङ्ग सूरि, जयकीर्ति विद्यागुरु थे देखो प्रो पीटर पीटरसन रिपोर्ट पृष्ट ३४९-३५०, ताडपत्र लेख

अर्थ

पूज्य श्री मेरुतुङ्गसूरि इन्होंने दिक्षा दिया हुआ, और इन के पाटपर उदय पाये गुरु श्रीजयकीर्तिसूरि इन्होंने वात्सल्य से पढाया हुआ, शीलरत्न आचार्य, अपने से अल्पबुद्धिवालों को सम्मत व रुचि यह टीका करी यह जैनोत्तम बडे काव्यकी टीका विक्रमनृप के गत संवत् १४९१ के वर्षमें, अनुराधा नक्षत्र युक्त चैत्र मास पंचमी बुधवार को भूवनप्रसिद्ध अणहिल्लपुर पत्तनमें पूर्ण हुई OX\

द्विगुरु

धर्मकुमार साधु के दो गुरु शालिभद्र कृत चारित्रमें,

१ विबुधप्रभसूरि आयस ८ पृष्ठ ११४

२ प्रद्युम्नसूरि आ ३ लेख पृष्ठ ८०

ताडपत्र लेख पृष्ठ १७५

द्विगुरु.

प्रसन्नचन्द्रसूरिके दो गुरु थे अभयदेव व उनके बडे भाई जिनचन्द्रसूरि

ताडपत्र लेख पृष्ठ ८४ ३०६ ३०२

३ आयस लिख पृष्ठ ८०

द्विगुरुः

देवर्द्धिगणिक्षमा श्रमण के दो गुरु थे लोहित्यसूरि और दूसगणि संवत ९८०

" देवर्द्धिसिंह माथुर हिमवनाग जुणा गोविंदो
सिरिदूदभूइ दिन्न लोहिच दूसगणिणो य देवड्ढी

आथर्स पृष्ठ ९९ प्रो पी पीटर्सन का रि० ३ ताडपत्र लेख पृष्ठ ३०३ स्थविरावली भ्रन्थकारोंकीसूची प ९०

जिनदत्तके दो गुरु वासिल व जीवदेव प्रो पीटर पीटरसनके चौथे रिपोर्टकी ग्रन्थ कर्त्ताओंकी सूचीपत्र पृ ३६ में

शुभशीलके दो गुरु थे लक्ष्मीसागर और मुनिसुंदर स १९२१ प्रो पीटरसन के चौथे रिपोर्ट की ग्रंथकर्त्ताओंकी सूची पृ १२१

लब्धिसागरके तीन गुरु थे उदयसागर, ज्ञानसागर, व उदयसागर संस्कृत श्रीपाल कथा लब्धिसागर कृत

तपगच्छीमल्लचक्र मुनीन्द्रोदयनसमा ज्ञानसागरसूरीन्द्रा गच्छे- न्द्रोदयसागरा ६ तत्पट्टे जयाद्रि श्रीलब्धिसागरसूरिभि गाथामयकथा स्मोरे श्वेंके देव क्रयो दृता ७ मुनीपुरारभूतेद्वे (१९९७) प्रो पीटर पीटरसन का रिपोर्ट ३ पृष्ठ २२०, पीटरसनके रिपोर्ट ४ म पृष्ठ १४-१४-१७

अर्थ

उनके पाट के पंक्ति की शोभा उदयवल्लभसूरि, ज्ञानसागरसूरि और गच्छके इन्द्र उदयसागरसूरि उन्होंके पाटपर विजयी लब्धिसागरसूरि ने गाथामयकथाख्या समुद्र मे यह कथा श्लोकोंमे उद्धत श्री सम्बत् १६ ७ म

अन्यदीक्षित गुरु

सिद्धर्षिकृत उपमितिभवप्रपञ्च सवत् ९६२

"ततो भ दुल्लभ्यकीर्त्ते जलगोत्र विभूषण। दुर्गस्वामी महाभाग प्रख्यात पृथिवीतले ॥ प्रव्रज्या ग्रन्हतापेन गृह सद्गनपरित हित्वा सद्धर्ममाहात्म्य क्रियैवप्रकाशितम् ॥ यस्य तच्चरित वीक्ष्य शशाङ्ककर-निर्मलम् बुद्धास्तप्रत्ययादेव भूयासो मतव स्तदा ॥ सद्दीक्षादायक तस्य स्वस्यचाह गुरूत्तमम् ॥ नमस्यामि महाभाग गर्गर्षि मुनिपुङ्गवम् ॥ आचार्य हरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुर ॥ प्रस्तावे भावतोहत सएवाद्ये निवेदित ॥ ताड पत्र लेख पृष्ट १४७

अर्थ

"इस पीछे उत्सवकीर्ति व पृथ्वीमडलपर विख्यात व श्रमगोत्रके भूषण, दुर्गस्वामी हुवे दीक्षालेके जिन्होंने धनसे भराघर छोडकर क्रियासेही सद्धर्मका माहात्म्य प्रकाशित किया व जिसका चद्रकी किरणोंसे निमल चरित देखकर उसके प्रत्ययसेही बहुतसे जन्तु प्रबुद्ध हुवे उनको (दुर्गस्वामीको) दीक्षा देनेवालेको और मुझे खुदको दीक्षा देनेवाले गुरुको मैं मुनियोंमे श्रेष्ठ महाभाग गर्गर्षि को नमन करता हू आचार्य हरिभद्र मेरे धर्म बोध करनेवाले गुर हैं भावसें प्रस्तावमें पहिले यही निवेदन किया है

देल्लमहत्तर पृ IXI

सिद्धर्षि CXXIX पृष्ट

आर्यरक्षितसूरि के तीन गुरु

आर्य रक्षित सूरिने तोसली पुत्रसे दीक्षा ली व भद्रगुप्ताचार्य के पास पूर्वका अभ्यास किया, और वज्रऋषि के पास बाकी ग्रन्थ पढ कर उनके चेले हुये प्रो पीटरसन का ४ रि पृष्ठ ३४४

जिनदत्तसूरि के तीन गुरु थे जिनवल्लभसूरि—धर्मदेवगणि, व देवभद्रसूरि

रत्नसागर भाग २ पृष्ठ ११०

जिनदत्त का नाम सोमचन्द्र था, जन्म सम्वत् ११३२ में हुआ आठ वर्षकी उमरमें, जिनवल्लभसूरि से, प्रतिबोध पाकर, वाचक धर्मदेव गणि के पास दीक्षाली, अर्थात् जैन साधु हुये, पीछे, गुरु के पास संपूर्ण शास्त्रोंका अभ्यास किया सम्वत् ११६९ में देवभद्रसूरि आचार्यने सूरि मन्त्र देकर सोमचन्द्र को आचार्य पद, दिया, और जिनदत्तसूरि नाम रखा

चतुर्गुरुः

उदयसिंहसूरि के चार गुरु थे

देखो मुम्बई राय्ल एसियाटिक सोसायटी के ब्रांचके अप्रेल १८८७ से मार्च १८९२ का जरनल पृष्ठ९

१ भुवनरत्नसूरि दीक्षा गुरु
२ नमिप्रभसूरि मामागुरु
३ माणिक्य प्रभु, शिक्षा गुरु
४ महिमचन्द्रसूरि पदप्रतिष्ठा गुरु

खास गुरु माणिक्य प्रभु थे

(3) Bhuvanaratnasuri, Nemiprabhasuri, Manikyaprabhasuri, and Mahunachandrasuri With all these our commentator Udayasimhasuri stood in a relation which he specifies The first was his dikshāguru The second was his Maternal uncle The third was his sikshāguru The third was his padapratishthāguru He adds that he was the servant of the third, Manikyaprabhasuri

---

चार गुरुः

तरुणप्रभसूरि के गुरु चार थे

श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रविवरण पी पीटरसन रि ३ ताडपत्र

लेख पृष्ठ २२१ २६२

जिनप्रबोधाभिधसूरि रासीत् तत्पट्टपूर्वा चलचन्द्र भानु । पट्टे तदीये **जिनचन्द्रसूरि** रभूमनो भजयकारिमूर्ति ६ येना युगप्रधानाना प्रसाद पद दैवतम् ॥ दीक्षा चिन्तामणी मह्य ज्ञानतेजस्विनीं ददौ ७ पितृभ्योप्यऽनिनासत्य येना थापितया मयि।यश **कीर्तिगणिता** पूतविद्या मभाणयत् ८ **राजेन्द्रचन्द्रसूरीन्द्रै** र्विद्या काचन २। जिना **दिकुशलाद्यै** श्चादाध्याचार्य पद यमे ९ अम्भोजा म्मकरद बिन्दु निकरा ष्टाला पथा मदूप स्वा वृत्ति तनुते त था श्रुतकणा नादाय शुद्धे पदे ॥ सूरि **श्रीतरुणप्रभः** प्रमितधे मुग्धानि मुग्धा मना पोतावस्यकसूत्र वृत्तिमलिखन् सोऽपात्रको प्रमदाम् १०

अर्थ

जिनप्रबोधसूरि इस नाम के आचार्य थे उन के पाट के पर्वतस्थ सूर्य व कामदेव के जीतनेवाले जिनचन्द्रसूरि हुये जिनयुगप्रधानों का फरदेशन (चारदेशन) प्रमत्तोंका ज्ञान को तेजस्वीकरने

वाली चिंतामणि (चिंतापूर्ण करनेवाली) दीक्षा मुझे दियी जिनासे भी अधिक वात्सल्य जिन्होंने मुझपर दिखाया ऐसे यश कीर्तिगणिने मुझे पहिले विद्या पढ़ायी, और कुछ कुछ विद्या राजेन्द्रचंद्रसूरीन्द्रने पढ़ाई, व जिनकुशल ने मुझे आचार्य पद दिया व कमल के मकरंद (कमल के पुष्पका रजस) के कणोंका समुदाय लाकर जैसे भ्रमर अपनी वृत्ति चलाता है वैसे ऊंचे पदों के मुखसे भी मुग्ध आत्मा वालों को प्रमाण करणे के लिये सुखसे समझने वाली षट् आवश्यक सूत्र की टीका तरुणप्रभसूरिने लिखी।

जिनप्रबोध के शिष्य जिनचंद्रने तरुणप्रभको दीक्षादी प्रो पी पी रि, ४ पृष्ठ XXXV (३५) यश कीर्ति तरुणप्रभ के विद्या गुरु थे प्रो पी रि ४ इडेक्स आवर्त पृष्ठ XCIX (९९) राजेन्द्रचंद्र विद्यागुरु थे प्रो पी पी रि ४ इ०आ० पृष्ठ CVI १०६ जिनकुशलने आचार्य पद देकर अपना शिष्य व अधिकारी बनाया प्रो. पी पी रि ४ पृष्ठ XXXIII(३३) तरुणप्रभ के खास गुरु जिन कुशल थे प्रो पी, पी रि ४ इ० आ० पृष्ठ XlVII (४७)

Our author Tarnnaprabhasuri was one of Jinakusala's pupils He received diksha and Acharyapada from Jinakusala Yasahkirti and Rajendrachandrasuri were his teachers In v 13.

शिष्यकी बदला बदली व दूसरेके हाथसे दीक्षादिलाना व निकालदेना

जैनपति सम्प्रदायमें चेल्ला यह एक ऐसा पदार्थ है कि गुरु जब निकालना चाहे निकाले, चेलेका कुछ हक नहीं, अगर गुरु

अपना चेला किसीको देना चाहे तो चेलेको देसक्ता है वेलेके भरण पोषण के बदले गुरु कोई प्रकारका अधिकार नहीं है

श्रीधर्मसूरी के पाट पर श्रीजिनेन्द्रसूरि हुये वे खान्तिविजय का बहुत मान रखते थे एक दिन श्रीखान्तिविजयजीके शिष्य रूपत विजय को स्वलक्षणयुक्त देखकर जिनेन्द्रसूरीने कहा कि हमारे दौलत विजय प्रमुख दशचेले हैं परन्तु पाटयोग्य (अर्थात् मेरे पश्चात् उत्तराधिकारी होने लायक) कोई दिखता नहीं तब खान्तिविजयजीने कहा कि रूपतविजय पर आपकी मरजी होयतो आप रखो तब श्रीपूज्य जिनेन्द्रसूरिने रूपतविजयको अपने पास रखा और अपना उत्तराधिकारी बनाया देखो आत्मारामजीके अपेक्षा चतुर्थस्तुति निर्णयोद्धार प्रस्तावना पृष्ठ ४६

श्रीप्रमोद विजयके ५ चेले थे उनमेसे दो चेलों को उद्धत होनेसे गुरुने अपने पाससे निकाल दिया बाकी तीन मेंसे धिरचंद व रतनचंद इन दोनोंको हेमविजयके पाससे दीक्षा दिलाई और बाद, देवेन्द्रसूरिके हाथ से नन्दीक्षा दिलाकर, बडी दीक्षा दिलाई बाद सागरचंद वगैरोंके पास व्याकरणादि ग्रंथ पढाकर उनको पंडित पद दिलाया और अपना शिष्यबनाया यह अहमदाबादमें संवत् १९४६ के सालमें छपी हुई चतुर्थस्तुतिनिर्णयोद्धार नामके पुस्तक के पृष्ठ ४९ में लिखाहै

एक गुरुको छोडकर दूसरे गुरुका शिष्य होना

रत्नसागर भाग २ पृष्ट १०८

श्री अभयदेवसूरि के पाटपर जिनवल्लभसूरि हुये वे पहिले कूर्चपुरीय चैत्यवासी जिनेश्वर सूरि के शिष्य थे जब उन्होंके पास

दशमी कालक सूत्र पढते थे तब वैराग्य को प्राप्त हो के, गुरुजी से कहा कि साधुका आचार तो ऐसा है और आप ऐसा शिथिलाचार क्यों धारण किया तब गुरुने कहा अभी हमारा ऐसा ही कर्मोदय है तब श्रीजिनवल्लभसूरि को पूछ कर, शुद्धक्रिया निधान परम संवेगी श्रीजिनअभय देवसूरि के शिष्य हो गये

शिष्य अपने पहिले गुरुको त्याग कर दूसरा गुरुकरसकता है

(रत्नसागर भाग २ पृष्ठ १०१।१०२)

नेमिचन्द्र के पाटपर उद्योतनसूरि हुये इस के पास ८३ साधुओंके शिष्य पढते थे इन के पास जिनचन्द्र नाम के आचार्य का वर्द्धमान शिष्य था वह गुरुका कथन अयोग्य समझ उद्योतनसूरि का शिष्य हो गया उस को आचार्य बनाया उद्योतनसूरि से ८३ साधुवों के शिष्य बोले की " हमारे मस्तकपर वासचूर्ण करो हम आपसे पढे हैं, इस से आपके शिष्य हैं तबगुरुने कहा " वासचूर्ण लावो " तब शिष्यलोग उतावल (शीघ्रता) में सूखे छाने का चूर्ण करके गुरु महाराज को दिया तब गुरु महाराज ने भी उस चूर्णको मंत्रकर ८२ शिष्यों के मस्तकपर करादिया और अपना शिष्य बनाया ।

जैनयति सम्प्रदाय में चेले का वारसा जिसको मध्यतने व उसके महतने पसंद किया हो वह वारस होता है

आमा स अ रि व्हा १ पृष्ठ ३०९—दायभाग पृष्ठ ४५ कलम १६२ पर टीप

"कोई गुरु मयन हुआ तो, उसका वारसा उस के चेलेको मिलना है ऐसा नहीं परंतु मयत गुरुने जिसको मुकर्रर किया हो, व जिसकी नेमणूक उस पंथ के दुसरे महंतोंने कायम किया होगी, वह मयत का वारस होता है

यति सम्प्रदाय में द्विगुरु का वारसा

वेस्त बुल्र प्रकरण ९ भाग ३ पृष्ट २४३-२४६

"जती जो भी पहिलेसे एक गुरुका शिष्य होकर, अनंतर, श्रीपुज्यविधिसे दुसरे का शिष्य हुआ तोभी उसने, पहिले गुरुको छोड़ा, ऐसा होता नहीं पहिले गुरुने जो नाम उसको दिया तो उसने अभी तक कायम रखा है अतएव उसके वारसेका हक्क गया ऐसा कहने आता नहीं सूरत ता २९ सप्टम्बर सन १८४९

शास्त्राधार

मि व्य पर ९९ पृ १ पंक्ति १३

वानप्रस्थ, सन्यासी, और ब्रह्मचारी इनकी जिंदगी के, आचार्य, सच्छिष्य, धर्म भ्रातैकतीर्थि, यह क्रमसे अर्थात् उल्टे क्रमसे वारस होते हैं मि व्य दाय भाग पृष्ट २९१

सन्यासीकी जिंदगी तो सच्छिष्यनेही लेना, सच्छिष्य अर्थात् जो अध्यात्म शास्त्रका श्रवण, मनन, आचरण इस विषय में समर्थ हो वो कारण आचार्यादिक भी यदि दुर्वृत्त हैं तो धन लेनेको अधिकारी नहीं मि व्य दायविभाग पृष्ट २९२

गुरु के पास अनेक शिष्य, सेवा शुश्रूषा करने वाले व आजन्म पर्यन्त गुरु के पास रहकर जन्मव्यतीत करनेवाले हों, तो भी, यदि उनमें कोई योग्य शिष्य नजर न दिखे, तो गुरु अन्यधर्मी योग्य पुरुष को बुलाकर, अपना शिष्य बना के, अपनी गादी का मालक बना सकता है ऐसा शास्त्रोंमें नियम है परिशिष्ट पर्वन् हर्मन् जकोबी का मुद्रित पृष्ठ १६२ से १७२ तक

तनश्च प्रभवस्वामी कात्यायनकुलोद्भव ।
तीर्थप्रभावना कुर्वन्नुर्वीमल्पमपावयत् ॥ १ ॥
अ पदार्धस्यकश्रान्तमुनाया शिष्टपर्षदि ।
निशीथे योगनिद्रास्थ प्रभवस्वाम्यचिन्तयत् ॥ २ ॥
भावा को मे गणधरो ऽर्हद्धर्माम्भोजभास्कर ।
सङ्घस्य य स्यात्ससारसागरे पोतसन्निभ ॥ ३ ॥
अनया चिन्तयारूढो गणे सङ्घे ऽपि च स्वके ।
उपयोगं चकारेष्टज्ञेयालोकप्रदीपकम् ॥ ४ ॥
स ज्ञानभानुनादित्यतेजसेन प्रसारिणा ।
नाद्राक्षीत्तादृश कश्चिद्व्युच्छित्तिकर नरम् ॥ ५ ॥
उपयोग ततश्चादात्परेषामपि दर्शने ।
तादृगर्थी पङ्कादप्युपादेय हि पङ्कजम् ॥ ६ ॥
ददर्श च पुरे राजगृहे शय्यम्भव द्विजम् ।
यज्ञ यजन्तमासन्नभव्य व सकुलोद्भवम् ॥ ७ ॥
अन्यदापि विहरन्स्य श्रमणैरनगारिभि ।
इत्यगात्प्रभवस्वामी तत्रैव नगरोत्तमे ॥ ८ ॥
आदिशच्च द्वयोर्मुन्योर्गच्छता यज्ञवाटके ।
तत्र भिक्षार्थिनो युवा धर्मलाभाशिष युताम् ॥ ९ ॥

अग्नि मानाग्निभिन्नत्र यत्नगाटढिनाग्निभि ।
अति प्रख्याप्यमानाभ्यां युगाभ्यां वा नभादगम् ॥१ ॥

अहो कष्टमहो कष्ट तत्त्व विज्ञापने न हि ।
अहो कष्टमहो कष्ट तत्त्व विज्ञायने न हि ॥ ११ ॥

अ र वन्दनमालाङ्कद्वारमुत्तम्भिनत्नगम ।
द्वार्मुक्ताचामनाहार समिन्धानूनमाणनम् ॥ १२ ॥

चत्वालबद्ध उगल वेदिमध्येद्धपावकम् ।
होमद्रव्यभृतानेकपात्रमूर्तिभिराकुलम् ॥ १३ ॥

सामिधेन्यर्पणव्यग्राध्वर्युम ध्वरवाटकम् ।
तौ मुनी जग्मतुर्भिक्षासमये गुर्वनुज्ञया ॥ १४ ॥

॥ त्रिभिर्विशेषक ॥

भिक्षमादित्सुभिर्विप्रैर्निवृत्यारन तौ मुनी ।
गुर्वादिष्टमहो नष्टमित्याचचतुरचकै ॥ १५ ॥

अन्तरे दीक्षितस्तत्रिमनामा शय्यम्भवो द्विज ।
यज्ञवाटद्वारदेशस्थितो ऽश्रौषाद्वचस्तयोः ॥ १६ ॥

अचिन्तयच्चोपशमप्रधाना साधवो ह्यमा ।
न मृषावादिन इति तत्रे सन्देहिन मे मन ॥ १७ ॥

इति सन्देहदोलाधिरूढेन मनसा स त ।
किं तत्त्वमिति प्रपच्छोपाध्यायं सुधिया वर ॥ १८ ॥

उपाध्यायो ऽवदत्तत्त्व वेदा स्वर्गापवर्गदा ।
ते वेदेभ्यो ऽपर तत्त्वमिति तत्त्वविदो विदु ॥ १९ ॥

शय्यम्भवो ऽभ्यधान्नून प्रतारयसि मान्शान् ।
यज्ञादिदक्षिणालोभाद्धि तत्त्वमिति मुनय ॥२०॥

वीतद्वेषा वीतरागा निर्ममा निष्परिग्रहा ।
शान्ता महर्षयो नैते वदन्ति वितथं क्वचित् ॥२१॥
न गुरुस्त्वं त्वया ह्येतद्विश्वमाजन्म वञ्चितम् ।
नितान्त शिक्षणीयो ऽपि प्रत्युताथ दुराशय ॥२२॥
यथावस्थितमाख्याहि तत्त्वमेवं स्थिते ऽपि भो ।
नो चेच्छेत्स्यामि ते मौलिं न हत्या दुष्कृतिमहे ॥२३॥
इति कोपाद्यकर्षासिमाकृष्टासिरलक्षि स ।
तस्य युगाचनायात्तपत्र साक्षादिवान्तकः ॥२४॥
उपाध्यायो ऽप्यन्ते दध्यौ मिमारयिषुरेष माम् ।
यथार्थतत्त्वकथने समयो ऽयमुपागतः ॥ २५ ॥
इदं च पठ्यते वेदे त्वाम्नायो ऽप्येष न स्तृत ।
शस्य यथातत्त्व तत्त्व शिरश्छेदे हि नान्यथा ॥२६॥
तस्मात्प्रकाशयाम्याशु तत्त्वमस्मै यथातथम् ।
यतो जीनामि जीवन्हि नरो भद्राणि पश्यति ॥२७॥
इत्याचख्यावुपाध्यायो यावत्कुशलमात्मन ।
अमुष्य यूपस्याधस्तादप्यस्ति प्रतिमार्हत ॥२८॥
पूज्यते ऽत्र स्थितैनात्र प्रच्छन्न प्रतिमार्हती ।
तत्प्रभावेन निर्विघ्नमिदं यज्ञादि कर्म न ॥ २९ ॥
महातपा सिद्धपुत्रो नारद परमार्हत ।
अयमन्त्र हन्ति प्रतिमामार्हतीं विना ॥ ३० ॥
ततो यूपमुपाध्यायस्तमुत्पाट्य यथास्थिताम् ।
तामार्हप्रतिमा रात्रौ दर्शयित्वैनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥
इदं हि प्रतिमा यस्य देवस्य श्रीमदर्हत ।

तत्र तद्बुद्धिनो धर्मो यत्नाहि तु विडम्बना ॥ ३२ ॥
श्रीमदर्हत्प्रणीतो हि धर्मो जीवदयात्मकः ।
पशुहिंसात्मके यज्ञे धर्मसम्भावनापि का ॥ ३३ ॥
जीवानो वयमेव तु हन्त तस्मै र भूयसा ।
तत्र जानीहि मा मुग्ध भव त्वं परमाहत ॥३४॥
चिर प्रतारितो ऽसि त्व यथा स्वोदरपूर्तये ।
तात परमुपाध्यायस्त्रासि स्वस्ति ते ऽस्तु ॥३५॥
शाण्डिल्यो ऽपि त मत्या यज्ञोपाध्यायमब्रवीत् ।
त्वमुपाध्याय एवासि सत्यतत्त्वप्रकाशनात् ॥ ३६ ॥
इति शाण्डिल्यस्तस्मै सनेमय न्वोषभाक् ।
सुवर्णपात्रपानादि यज्ञोपकरण ददौ ॥ ३७ ॥
स्वय तु निर्गमामानु सर्पी तौ गवेषयन् ।
ययौ च तत्पदेरेव प्रभवस्वामिसन्निधौ ॥ ३८ ॥
ववन्दे प्रभवस्वामिपादान्सर्वान्मुनींश्च स ।
धर्मलाभाशिया तेश्चाभिनन्दित उपाविशत् ॥ ३९ ॥
कृताञ्जलिश्च प्रभवाचार्यपादान्व्यजिज्ञपत् ।
भगवन्तो धर्मतत्त्व ब्रूत मे मोक्षकारणम् ॥ ४० ॥
प्रभवस्वाम्ययाचख्यावहिंसा धर्म आदिम ।
चिन्तनीय शुभोदर्का यथात्मनि तथापरे ॥ ४१ ॥
वाच्य प्रिय मित तथ्य परस्याबाधक च यत् ।
तत्तथ्यमपि नो वाच्यं परबाधा भवेयत ॥ ४२ ॥
अदत्त नाददीताथ नित्य सन्तोषभाग्भवेत् ।
इहापि मोक्षसुखभागिव सन्तोषभाग् भव ॥४३॥

ऊर्ध्वरेता भवे प्राज्ञ सर्वतो मैथुनं त्यजन् ।
मैथुनं खलु संसारविषपादपदोहदः ॥ ४४ ॥

मुच्छा परिग्रहः सर्वं स्वशरीरे ऽपि निस्पृहः ।
आत्मारामो भवेद्विद्वान्यदीच्छेदपुनर्भवम् ॥ ४५ ॥

अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्माकिंचन्यलक्षणे ।
यमे पञ्चभिरध्वन मर्यादामानगुद्धरेत् ॥ ४६ ॥

ज्ञात्वा शय्यम्भवस्तत्त्व भवोद्विग्नः क्षणादभूत् ।
प्रभवस्वामिन पादानत्वा चैव व्यजिज्ञपत् ॥ ४७ ॥

अमद्गुरुगिरा मे ऽभूदतत्त्वे तत्त्वधीश्चिरम् ।
मृत्पिण्डमपि हेमैव पीतो मत्तो हि पश्यति ॥ ४८ ॥

तदद्य ज्ञानतरस्य प्रव्रज्या दीयतां मम ।
भवकूपे निपततो हस्तालम्बनसन्निभा ॥ ४९ ॥

ततश्च प्रभवस्वामी शय्यम्भवमहाद्विजम् ।
संसारवैरिणो भीतं परित्राजयति स्म तम् ॥ ५० ॥

परीषहेभ्यो नाभैषीन तपस्य महाशय ।
द्विरूया कर्म क्षिपामीति प्रत्युतोल्लुसितो ऽभवत् ॥५१॥

तुर्यषष्ठाष्टमादीनि दुस्तपानि तपासि स ।
तेपे तदा तपनवत्तेजोभिरतिभासुर ॥ ५२ ॥

कुर्वाणो गुरुशुश्रूषां गुरुपार्श्वप्रशान्तं ।
महाप्राज्ञ क्रमेणाभूत चतुर्दशपूर्वभृत् ॥ ५३ ॥

श्रुतज्ञानाग्निना तुल्य स्वान्तरमितापन ।
प्रभवस्तु पदे न्यस्य परलोकमसाधयत् ॥ ५४ ॥

शय्यम्भवो यदा पर्यव्राजीत्तोकमन्दाखिल ।
तज्जाया गुर्विणी दृष्ट्वानुशोचन्ति स्म यातं ॥ ५५ ॥

अहो शय्यम्भवो भद्रो निष्ठुरेभ्यो ऽपि निष्ठुर ।
य्या प्रिया यौवनवर्त्ती सुशीलामपि यो ऽत्यजत् ॥५६॥
पुत्राशयैव जीवन्ति योषितो हि पतिं विना ।
पुत्रो ऽपि नाभूदेतस्या कथमेषा भविष्यति ॥५७॥
पृच्छन्ति स्म च लोकस्तामपि शय्यम्भवप्रिये ।
गर्भसम्भावना कापि किं नामास्ति तवोदरे ॥ ५८ ॥
मनागित्यभिधानाय्ये सापि प्राकृतभाषया ।
उवाच मणयमिति तूष्णगर्भा बभूवतदा ॥ ५९ ॥
तस्याश्च ववृधे गर्भ प्रत्याशेव शनै शनै ।
समये च सुतो जज्ञे तमनोम्भोधिचन्द्रमाः ॥६०॥
ब्राह्मण्या मणयमिति तद्वार्ता कृतमुत्सवम् ।
इति तस्यापि बालस्याभिधा मनक इत्यभूत् ॥६१।
स्वयं मात्रा स्वय धात्र्या ब्राह्मण्या सो ऽर्भकस्तया
पाल्यमान क्रमेणाभूत्पादचङ्क्रमणक्षम ॥ ६२ ॥
अतीते चाष्टमे वर्षे पप्रच्छेति स मातरम् ।
क नाम मे पिता मातर्वैधव्येणाविशग्रा ह्यसि ॥ ६३ ।
मातापि कथयामास प्रव्रजत् पिता तव ।
तदा त्वमुदरस्थो ऽभू पालितो ऽसि मयार्भक॥६४।
अदृष्टपूर्वौ पितर त्वमायुष्मन्यथा ह्यसि ।
त्वामप्यदृष्टपूर्व यत तथा जनपिता तव ॥ ६५ ॥
तत्र शय्यम्भवो नाम पिता यत्तो ऽभवत् ।
प्रतापे धृतश्रमणे पर्यव्राज्यत चैत्यौ ॥ ६६ ॥
पितु शय्यम्भवस्यदर्शनायोत्सुक सुप ।

निरियाय गृहाद्बालो वञ्चयित्वा स्वमातरम् ॥६७॥
तदा शय्यंभवाचार्यश्चम्पाया विहरन्नभूत् ।
बालो ऽपि तत्रैव ययावाकृष्टः पुण्यराशिना ॥६८॥
कायचिन्ताविना सूरिः पुरीपरिसरे व्रजन् ।
ददर्श दूरादायान्तं तं बालं कमलेक्षणम् ॥ ६९ ॥
शय्यंभवस्य तं बालं पश्यतो ऽम्बुधिरिवोडुपम् ।
स्नेहानिरेकादुल्लासस्तदाभूदधिकाधिकः ॥७०॥
मुनिचन्द्रमसं दूरात् दृष्ट्वा बालको ऽपि हि ।
विकसद्वदनः सो ऽभवत्सद्यः कुमुदकोषवत् ॥७१॥
आचार्यो ऽपि हि तं बालं पप्रच्छातुच्छहर्षभाक् ।
को ऽसि त्वं कुत आयासीः पुत्रः पौत्रो ऽसि कस्य वा॥७२॥
सो ऽर्भको ऽभिदधे राजगृहान्नाहमागतः ।
सूनुः शय्यंभवस्यास्मि वत्सगोत्रद्विजन्मनः ॥ ७३ ॥
मम गर्भस्थितस्यापि प्रव्रज्यामाददे पिता ।
गवेषयितुमहं बम्भ्रमीति पुरात्पुरम् ॥ ७४ ॥
शय्यंभवं मे पितरं जानते यदि तन्मम ।
पूज्यपादाः प्रसीदन्तु क सो ऽस्तीति वदन्तु च ॥७५॥
पितरं यदि पश्यामि तदा तत्पादसन्निधौ ।
परिव्राज्याम्यहमपि या गतिस्तस्य सैव मे ॥ ७६ ॥
सूरिः प्रोवाच तात ते जानामि स सुहृन्मम ।
शरीरेणाप्यभिन्नश्चाप्युच्यस्तमिव विद्धि माम् ॥ ७७ ॥
तन्ममैव सकाशे त्वं परिव्रज्या शुभाशय ? ।-
प्रतिपद्यस्व को नाम भेदः [illegible]

सूरिस्त बालमादाय जगामाथ प्रतिश्रयम् ।
स्वय लाभ सचितो ऽभूदिति चालोचयन्स्वयम् ॥७९॥

समस्तसावद्यविरतिप्रतिपत्तिपूर्वकम् ।
तमप्राव्राजयद् बाल सूरिर्जिनमतिप्रहृत् ॥ ८० ॥

उपयोग ददौ सूरि कियत्स्यायुरित्यथ ।
षण्मासा यावज्जीवीति तच्च सद्यो विवेद स ॥८१॥

एवं च चिन्तयामास शय्यम्भवमहामुनि ।
अल्पायुरयं बालो भावी श्रुतधर कथम् ॥ ८२ ॥

अपश्चिमो दशपूर्वी श्रुतसार समुद्धरेत् ।
चतुर्दशपूर्वधरः पुनः केनापि हेतुना ॥ ८३ ॥

मणकप्रतिबोधे हि कारणे ऽस्मिन्नुपस्थिते ।
तदुद्धराम्यहमपि सिद्धान्तार्थसमुच्चयम् ॥ ८४ ॥

सिद्धान्तसारमुद्धृत्याचार्य शय्यम्भवस्तदा ।
दशवैकालिक नाम श्रुतस्कन्धमुदाहरत् ॥ ८५ ॥

कृत विकालवेलाया दशाध्ययनगर्भितम् ।
दशवैकालिकमिति नाम्ना शास्त्र बभूव तत् ॥८६॥

अपाठयन्मणक त ग्रन्थ निर्ग्रन्थपुगव ।
श्रीमान् शय्यम्भवाचार्यस्तया धुर्य कृपावताम् ॥ ८७ ॥

आराधनादिक कृत्य कारित सूरिभि स्वयम् ।
षण्मासान्ते तु मणक काल कृत्वा दिव ययौ ॥८८॥

त्रिपेदाने तु मणके श्रीशय्यम्भवसूरय. ।
भवनयनैरश्रुजल शारदमेघवत् ॥ ८९ ॥

यशोभद्रादिभि शिष्यैस्तु खिन्नचित्तैर्मनै ।
सूरिर्व्यत्यनह र. किमिद हेतुरत्र क ॥९०॥

ततो मणकवृत्तान्त सुतसम्बन्धबन्धुरम् ।
शिष्येभ्यो ऽकथयत्सूरिस्तज्जन्म मरणावधि ॥९१॥
उवाच चैष बाल्ये ऽपि कालेनाल्पीयसापि हि ।
पालित्वामलचारित्रो ऽकार्षी काल समाधिना ॥ ९२ ॥
बाल्ये ऽप्ययमबाल्ये ऽभूच्चरित्रेणेति सम्मदात् ।
अस्माकमश्रुसम्पात पुत्रस्नेहो हि दुस्त्यज ॥ ९३ ॥
ऊचु शिष्या नमद्ग्रीवा यशोभद्रादयस्तत ।
पूज्यैरप्ययमस्माकं किमादौ ज्ञापितो न न ॥ ९४ ॥
मणकस्तुल्यको ऽस्माकमय हि तनुभूरिति ।
अज्ञापयिष्यन्यदस्मा गुरुपादा मनागपि ॥ ९५ ॥
गुरुवद्गुरुपुत्रे ऽपि वर्तनीयमिति वचो नयम् ।
अकरिष्याम हि तदा सत्य नत्पर्युपासनात् ॥९६॥युग्म॥
सूरिर्भूरिमुदित्यूचे तस्याभूत्सुगतिप्रदम् ।
तपोवृद्धेषु युष्मासु वैयावृत्त्योत्तम तप ॥ ९७ ॥
ज्ञातास्मत्पुत्रसम्बन्धा यूय हि मणकान्मुने ।
नाकारयिष्यतोपास्ति स्वार्थं सो ऽथ व्यमोक्ष्यत ॥९८॥
अनुमत्यायुष ज्ञात्वा कद्धु श्रुतसर मया ।
सिद्धान्तसारमुद्धृत्य दशवैकालिक कृतम् ॥ ९९ ॥
मणकार्थं कृतो ग्रन्थस्तेन निस्तारितश्च स ।
तदेन सवृणोम्यद्य यथास्थाने निवेशनात् ॥१००॥
यशोभद्रादिमुनय सङ्घश्चाख्यन्निद तदा ।
दशवैकालिक ग्रन्थ सवरिष्यन्ति सूरयः ॥१०१॥
सङ्घो ऽप्यभ्यर्थयाश्चक्रे सूरिमानन्दपूरित ।
मणकार्थो ऽप्यय ग्रन्थो ऽनुगृह्णात्वखिलं जगत् ॥

अत परं भविष्यन्ति प्राणिनो ह्यल्पमेधस ।
कृतार्थास्ते मणकवद्भवन्तु त्वत्प्रसादत ॥१०३॥
श्रुताम्भोजस्य किञ्जल्क दशवैकालिक ह्यत ।
आचम्याचम्य मोदन्तामनगारमधुव्रता ॥१०४॥
इति सङ्घोपरोधेन श्रीशय्यम्भवसूरिभि ।
दशवैकालिकग्रन्थो न संवव्रे महात्मभि ॥१०५॥
श्रीमाञ्शय्यम्भव सूरिर्यशोभद्र महामुनिम् ।
श्रुतसागरपारीण पदे स्वस्मिन्प्रतिष्ठिपत् ॥१०६॥
कृत्वा मरण समाधिनाथा-
दय शय्यम्भवसूरिरूर्ध्वलोकम् ।
श्रुतकेवलिनो निमे ऽपि कार्ये
किं मुह्यन्ति जगत्प्रदीपकल्पा ॥१०७॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते परिशिष्टपर्वणि स्थविरावलीचरिते प्रभवदेवत्वशय्यम्भवचरितवर्णनो नाम पञ्चम सर्गः समाप्त ॥

---

5 Sajjambhava He was a native of Rajgriha and was next appointed as the Head o. the Church He was of Batsya gotra and was converted by the appearance of an image of Tirthankar Shantinath, when celebrating a sacrifiece as a Brahmin

An Epitome of Jainism Page 660]

वासक्षेप विधि.



रायल एसियाटिक सोसायटी के मुम्बई ब्राच का जनरल ऩंबर ८ के सन १८६३ ६४ से १८६४-६९ के आर्टीक्लेरियन् रिमेन्स मेवारा व पदन का पृष्ट २९८

The powder which the Jainas make is of a pale yellow colour It is used for worship, for sprinkling on newly consecrated images, and on disciples when first admitted to holy orders

The Jain scented powder Vasakhepa, or more properly Vasakshepa, is made of sandalwood, saffron, musk, and Dryobalanops aromatica, *bhimseni barasa* The last two ingredients are taken in very small quantities and mixed with saffron and water They are rubbed on a stone slab by a large piece of sandalwood, and a ball is prepared This ball is dried, powdered, and kept in silk bags which are specially made for holding it

१ जिस मनुष्य के नाम से मृत्युलेख में दान लिखा हुआ है, वह मनुष्य, मृत्यु लेख करने वाला मरण हुआ तब, जीवन न हुआ वह दान दुसरे किसी मनुष्य के तरफ जावे, ऐसा मृत्युलेख करने वाले का अभिप्राय था यह मृत्युलेख परसे दिखता न हो तो,

अत पर भविष्यन्ति प्राणिनो ह्यल्पमेधस ।
कृतार्थास्ते मणकवद्भवन्तु त्वत्प्रसादत ॥१०३॥
श्रुताम्भोजस्य किञ्जल्क दशवैकालिक तत ।
आचम्याचम्य मोदन्तामनगारमधुव्रता ॥१०४॥
इति सङ्घोपरोधेन श्रीशय्यम्भवसूरिभि ।
दशवैकालिकग्रन्थो न संवव्रे महात्मभि ॥१०५॥
श्रीमाञ्छय्यम्भव सूरिर्यशोभद्र महामुनिम् ।
श्रुतसागरपारीण पदे स्वस्मिन्प्रतिष्ठिपत् ॥१०६॥
कृत्वा मरण समाधिनागा-
दथ शय्यम्भवसूरिरुत्तमलोकम् ।
श्रुतकेवलिनो विभो अपि कार्य
किं मुदाम्नि जगत्प्रदीपकल्पा ॥१०७॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते परिशिष्टपर्वणि स्थविरावलीचरिते प्रभवदेवत्वशय्यम्भवचरितवर्णनो नाम पञ्चम सर्ग समाप्त ॥

---

5 Sajjambhava He was a native of Rajgriha and was next appointed as the Head of the Church He was of Batsya gotra and was converted by the appearance of an image of Tirthankar Shantinath, when celebrating a sacrifiece as a Brahmin

An Epitome of Jainism Page 660]

वासक्षेप विधि.



रायल एसियाटिक सोसायटी के मुम्बई ब्रांच का जनरल नंबर ८ के सन १८९३-९४ से १८९४-९५ के आन्टीकेरियन रिमेंस सोपारा व पदन का पृष्ठ २९८

The powder which the Jainas make is of a pale yellow colour It is used for worship, for sprinkling on newly consecrated images, and on disciples when first admitted to holy orders

The Jain scented powder Vasakhepa, or more properly Vasakshepa, is made of sandalwood, saffron, musk, and Dryobalanops aromatica, *bhimseni barasa* The last two ingredients are taken in very small quantities and mixed with saffron and water They are rubbed on a stone slab by a large piece of sandalwood, and a ball is prepared This ball is dried, powdered, and kept in silk bags which are specially made for holding it.

१ जिस मनुष्य के नाम से मृत्युलेख में दान लिखा हुआ है, वह मनुष्य, मृत्यु लेख करने वाला मय्यत हुआ तब, जीवत न हुआ वह दान दुसरे किसी मनुष्य के तरफ जावे, ऐसा मृत्युलेख करने वाले का अभिप्राय था यह मृत्युलेख परसे दिखता न हो तो, वह

दान रहित होकर, मृत्युलेख करनेवाले के शेअरनमें जावेगा जिस मनुष्य के नाम से मृत्युलेखमें दान लिखा है,वह दान लेनेका अधिकार, उस मनुष्य के वारस मनुष्य के तरफ जाने के लिये, मृत्युलेख करने वाला मयत हुवा, उस वख्त वह था ऐसा शाबित करना चाहिये (सन १८६८ का ऑक्ट १० कलम ९२)

२ मृत्युलेखमें दान जिस मनुष्य के नामसे लिखा, उस को वह दान किस वख्त मिलना, यह न लिखने वह दान मोघम शब्दोंमें लिखा हुवा होने से, मृत्युलेख करने वाला जिस दिन मयत होगा उस दिनसे उस मनुष्य का सत्व उस दानमें उत्पन्न होगा और वह दान मिले सिवाय वह यदि मयत हुवा तो उसके वारस के मनुष्यों के तरफ से वह दान जाने (सन १८६९ का ऑक्ट१०कलम ९१

३ असाधारण मृत्युलेख अगर पुरवणी, साधारण मृत्युलेख से अगर पुरवणी से किंवा जिस रीति से असाधारण मृत्युलेख किया होते, वह व्यवहारोपयोगी होगा, उसी रीति से वह मृत्युलेख अगर पुरवणा, रद करने का अभिप्राय, जिसमें दिखाया है वैसा एकादा कार्य करने से, किंवा रद करने का बुद्धीसे, वह मृत्यु लेख करनेवाले ने खुदने जलाकर, अगर फाडकर, अगर अन्यरीतिसे नष्ट करके किंवा समक्ष व उसके कहनेपर मे दूसरे मनुष्यने वैसा करके नष्ट करने से, रद करणे का अधिकार मृत्युलेख करनेवाले को है (सन १९६९ ऑक्ट १० कलम ५९)

यति लोगोंमें गुरु के मृत्युबाद गुरुकी मर्जी प्रमाणे यतिपचों का कर्तव्य

१ तपागच्छ के श्रीपूज्य विजयराजसूरि का देहान्त हुवे बाद उन के भाई महेन्द्रविजयने मुनिचन्द्रसूरिको लाकर अपने हाथसे दीक्षा सवत् १९९८ में देकर गादीपर बैठाया यह तपागच्छ के यतियों को व श्रावकों को मालुम है व उनको वंशपरंपरा उदयपुरदरबार से पालखी, दुशाला, छडी, वगैरे स्वाजमा मिलता था सो मिला और राधनपुर के नवाब साहेब के तरफ से डंका निशान मिलता था सो भी मिला

२ धनारी भवारी (आबूप्रान्त) में श्रीपूज्य महेन्द्रसूरि को यतियोंने दीक्षा देकर गादीपर बैठाया

३ सवत् १९६७ के कार्तिकमें बीकानेर के श्रीपूज्य जिन कीर्तिसूरि गुजरे, उन के बाद उनके शिष्य चुनिलाल को यतिया ने दीक्षा देकर गादीपर बेठाया

४ पालीतानावाले उपाध्याय करमचन्द्र के शिष्य लखमीचन्द को उनके काकागुरु मिलापचन्द ने, सर्व यतियों के समक्ष दीक्षा देकर, करमचन्दजी का चेला बनाया उस वक्त कर्मचन्दजी मरचुके थे सवत् १९६९ में

५ जूनागढमें अभी लाधाजी महाराज हाल मौजूद हैं, उन के गुरु उस वक्त मरचुके थे, उस बखत लाधाजी की उमर ८ वर्षकी थी वह योग्य अवस्थामें आने तक तपागच्छ के यति रूपविजय ने जाहगीर सभाली जब लाधाजी उमर में आये तब रूपविजय ने जयरतना के नाम से दीक्षा देकर उनका चेला किया श्रीपूज न होते दीक्षा दी अभी जूनागढमें कायम हैं

६ अचलगच्छ के श्रीपूज्य के भाई भागचन्दजी मरे बाद भाई साकरजी ने सम्वत् १९६६ के साल में दयासागरजीने मुंबई में उन के गुरु के नाम से दीक्षा दी और शान्तिसागर नाम रखा अभी मोजूद है

७ अहमदाबाद के रहनेवाले तपागच्छ के यति रत्नविजय गुजरे पीछे उनका चेला पुण्यविजय अदीक्षित था उसको दीक्षा वाला गौतम विजयने दीक्षा देकर रत्नविजयकी गादीपर बैठाया श्रीपूज्य कोई नहीं था

८ सूरतवाले तपागच्छ के यति दीपचंदजी गुजरे बाद कई वर्ष पीछे उनके शिष्य रतिहंस को लालसोमने दीक्षा दी और दीपचंदकी गादीपर बैठाया

९ खरतरगच्छ के यति मनसुखजी गुजर गये पीछे उनके काका गुरु तनसुखजीने उनके चेले को दीक्षा देकर गुरुजी का गादीपर बेठाया कोई श्री पूज नहीं था

उपर लिखी हुई हकीकत हमारे ध्यानमें है और ये मनुष्य अभी विद्यमान हैं

प राजेन्द्रसोमजीने उपर लिखी हुई हकीकत हमारे ध्यानमें होनेसे लिखा है बाकी तलाश करनेसे ऐसे दाखले बहुतसे निकलने संभव है द खुद॰

लि लक्ष्मीचंद करमचंदजी महाराज ना वंदना वाचशो

सेक्रेटरी,
यतिपाठशाला

जैन दर्शन में तत्त्व-मीमांसा

—मुनि नथमल